संसद, उद्‌भव या पराभव

डॉ. बासुकी नाथ चौधरी,

एसोसिएट प्रोफेसर,
पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

1861 से ब्रिटिश शासन के अधीन रहते भी संसदीय संस्थानों की कार्यशैली का साक्ष्य भारत रहा। 1909, 1919 और 1935 के अधिनियमों नें लोकतांत्रिक पद्धति की सीख को बढ़ाया ही। 1947 में आजाद हो गये और 1950 में अपना संविधान भी लागू किया। अमेरिकन अध्यक्षीय शासन प्रणाली या स्विश निर्वाचित कार्यपालिका के विकल्पों को नकारते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया। एक ओर गरीबी, भुखमरी, नदारद उद्योग, अशिक्षा, बेरोजगारी का आलम था तो दूसरी ओर वयस्क मताधिकार, शासन की अनुभवहीनता, साम्प्रदायिकता का विष था। 1952 में पहला संसदीय चुनाव हुआ और शासन (संसदीय) सच्चे अर्थों में प्रारम्भ।

आज हम मजबूत राष्ट्र की श्रेणी में खड़े हैं। स्थिर प्रजातंत्र, मजबूत अर्थ व्यवस्क्था, कई तकनीकी और अन्य नामी–गिरामी विश्वविद्यालय, दुनिया के सभी महत्वपूर्ण देशों में प्रवासी भारतीयों का दबदबा और विश्वगुरु बनने की तमन्ना। सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का दावा और अनुशासित मजबूत सैन्यबल की उपस्थिति। आण्विक शक्ति से लैस और रूढ़िवादी न्यायपालिका से जागृत, सजग, सक्रिय और स्वतंत्र न्यायपालिका तक का सफर।

आशा की जानी चाहिए कि हमारा समाज, शासन व्यवस्था, विभिन्न सरकारी संस्थाओं, जनमानस और संसदीय प्रणाली का उदभव होना चाहिए था। इस पेपर के माध्यम से मैं यह जानने का प्रयास कर रहा हूँ कि फिर ऐसा क्या हुआ है कि बुजुर्गों से सुनने को यदा–कदा मिल जाता है कि इससे अच्छा तो अंग्रेजों का राज था। इस संदर्भ में इस पेपर में संसद की कार्यप्रणाली की समीक्षा करेंगे कि आखिर हमारी यात्रा किधर की है – उदभव की या पराभव की। यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि आगे की संभावित यात्रा कैसी होगी?

कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटेन में विपक्षी दल के नेता एल. मिलीबैंड ने सुझाव दिया था कि प्रश्नकाल के दौरान आम नागरिकों के लिए संसद में ऐसी व्यवस्था हो कि मतदाता विभिन्न मुद्‌दों पर सीधे सवाल पूछें और प्रधानमंत्री सीधे जवाब दें। लोकतांत्रिक व्यवस्थायें ज्यादा मजबूत होंगी क्योंकि आमजनों का विश्वास संस्थाओं में बढ़ेगा। सरकार और राजनीतिक दलों की पारदर्शिता बढ़ेगी और कोई कितना भी मजबूर क्यों न हो, अलगाव की प्रवृत्ति नहीं आयेगी। भारत में पारदर्शिता का नायाब तरीका आज ''जनता दरबार'' के रूप में दिखाई देता है। आइये, प्रारम्भ करें:

प्रथम लोकसभा के काल (1952–57)

शायद यह संसदीय व्यवस्था का सर्वोत्तम काल था। 489 निर्वाचन क्षेत्र थे लोक सभा के। 44.9 प्रतिशत वोट के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 364 सीट जीता था। कुल 45.7प्रतिशत मतदान हुए थे। मुख्य विपक्षी पार्टी को 3.29 प्रतिशत मत और 16 सीट मिली थी। सोचिए प्रचण्ड बहुमत और पंडित नेहरू का नेतृत्व। 1956 में केवल 1 वर्ष के अन्दर 22,651 प्रश्न और बाद में कई पूरक प्रश्न पूछे गये, जिससे सांसद एवं आम नागरिक को सूचनाओं की जानकारी मिली।[1] मंत्रियों में सतर्कता थी और सांसदों को अपने कर्तव्यों का बोध। मौरिस जोन्स ने भारतीय संसद की कार्यवाही का विधिवत अध्ययन किया और उसकी अति सराहना की।[2] एंथोनी ऐडन ने तो प्रश्नकाल की तुलना ऑस्ट्रेलियन संसद के प्रश्नकाल से बेहतर पाया।[3] आखिल कुल श्रेय किसे दिया जाय, इस प्रश्न का उत्तर के.वी. राव ने अपनी पुस्तक ''पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी ऑफ इंडिया'' में उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है। स्वाभाविक है, उत्प्रेरक तत्व पंडित नेहरू थे। मौरिस जोन्स लिखते हैं कि नेहरू जी भारतीय संसद को एशिया के संसदों का गुरुकुल बनाना चाहते थे।[4] प्रश्नकाल में सामान्यतया नेहरूजी स्वयं उपस्थित रहते थे। विदेश नीति और अन्य सरकारी नीतियों पर होने वाली बहसों में हिस्सेदारी करते थे।[5]

द्वितीय लोकसभा (1957–62)

कांग्रेस को 7 सीटों का इजाफा हुआ। वोट प्रतिशत 45 प्रतिशत से बढ़कर 47.8 प्रतिशत हो गया। यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी फिर से दूसरे स्थान पर रही और उसके सीटों की संख्या 16 से बढ़कर 27 हो गई लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो उसे (कांग्रेस को) कम्युनिस्ट पार्टी से 5 गुणा अधिक मत मिले।[6]

इस समय तक नेहरू की नीतियों की आलोचना होने लगी थी। सुखद यह था कि अंधभक्ति ने स्वरूप लेना शुरू नहीं किया था। मुद्रा मामले में नेहरू मंत्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्य टी.टी. कृष्णमाचारी को इस्तीफा देना पड़ा क्योंकि उनका एक निर्णय ऐसा था जिसका संबंध सांसद फिरोज गांधी से था।[7] स्वयं नेहरू की भयंकर आलोचना संसद में इस बात पर हो रही थी कि चीन ने भारत–चीन सीमा का विवादित मानचित्र प्रस्तुत किया था लेकिन नेहरू ने कैबिनेट, विदेशी मामलों की समिति एवं रक्षा मंत्रालय की समिति के समक्ष उजागर नहीं किया था।[8] सारी आलोचनाओं के बाद भी नेहरू सबसे लोकप्रिय एवं श्रेष्ठ नेताओं की अपनी छवि बनाये हुए थे। 20 अक्टूबर 1962 को चीन ने भारत पर आक्रमण किया और इसके साथ ही पंडित जी की गरिमा धूल–धूसरित हो गयी। 1963 के जितने भी उपचुनाव हुए (तीन उपचुनाव) कांग्रेस बुरी तरह पराजित हो गयी।

इसके साथ ही लोक सभा का संस्थात्मक पतन साफ–साफ दिखाई देने लगा था।

संसद की संस्था के रूप में पतन की शुरुआत

नेहरूजी की मृत्यु के पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री (1964–66) प्रधानमंत्री बने। ''शास्त्री जी प्रश्नकाल के समय न उपस्थित रहते और न ही किसी मंत्री की सहायता में खड़े होते। बहसों में हिस्सा लेना, उनकी सूची में था ही नहीं। वे ओजस्वी वक्ता भी नहीं थे, इसलिए अपना प्रभाव भी नहीं छोड़ पाते थे।''[9] इंदिरा जी, शास्त्री जी के दुःखद और असामयिक मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री बनीं। अल्पकाल तक प्रधानमंत्री रहने के कारण शास्त्रीजी ने कोई लोकसभा चुनाव का सामना भी नायक के रूप में नहीं किया। लेकिन उनके समय में भारत–पाकिस्तान युद्ध हुआ और पाकिस्तान को बड़ी पराजय का सामना करना पड़ा। इससे

शास्त्री जी की प्रतिष्ठा में चार–चाँद जरूर लगे लेकिन लोकसभा की इज्जत का इससे क्या लेना देना।

इन्दिरा जी (1966–1977) तक एवं (1980–84) तक लगभग अट्ठारह साल प्रधानमंत्री बनी। इनके प्रारम्भिक दिनों में ही कांग्रेस का विभाजन हो गया और इंदिरा जी अल्पमत में आ गयी। कम्युनिस्टों के सहारे 1971 तक शासन किया। उस समय लोकसभा में प्रगतिशीलता दिखी। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स की समाप्ति और खदानों का राष्ट्रीयकरण देखने को मिला। लोकसभा की इज्जत बढ़ी। 1971 के चुनाव में इंदिरा जी 346 सदस्यों के साथ प्रधानमंत्री बनीं। पांचवी लोकसभा (1971–77) में भी लोकसभा ने अत्यन्त गौरवशाली काम किया। 482 विधेयक पारित हुआ और लोकसभा ने 4,072 घंटों तक कार्य किया।[10] आठवीं लोकसभा (1984–89) का चुनाव इंदिरा जी की हत्या की पृष्ठ में हुआ था। राजीव गाँधी को 414 सीट मिली थी। इन्दिरा जी की 7वीं लोक सभा से 61 सीटें ज्यादा। हद तो यह हो गयी कि एक क्षेत्रीय पार्टी तेलगू देशम पार्टी 30 सीटों के साथ मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभरी। कांग्रेस को 48.12 प्रतिशत मत प्राप्त हुआ।[11]

सबसे दुःखद बात इस लोकसभा की रही, सारी विवादित समस्याओं पर उलटा–पुलटा निर्णय लेना। मुस्लिम तुष्टीकरण के लिए सर्वोच्च न्यायालय का फैसला जो शाहबानो के केस में था पलट दिया गया। इस केस में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि मुस्लिम महिलाओं का यदि परित्याग किया जाता है तो परित्यक्ता को जीवन भर गुजारा भत्ता देना पड़ेगा। मोहम्मद आरिफ खाँ जो उस समय राजीव गाँधी के मंत्रिमंडल में मंत्री थे, स्वयं मुसलमान थे, उन्होंने लोकसभा में इसका जबर्दस्त विरोध किया और अपने पद से इस्तीफा दे दिया लेकिन सरकार ने फैसला पलट ही दिया। अब सवाल हिन्दुओं के सामने यह सिद्ध करना था कि सरकार पंथनिरपेक्ष है। तो अयोध्या में राम–जन्मभूमि मंदिर के बंद ताले को खोल दिया। सम्प्रदायवाद की एक लहर की शुरुआत हुई।

बाद की लोकसभा की कार्यशैली और सरकार द्वारा अपनाये गये कार्य प्रणाली का लोकसभा के चुनाव पर काफी असर पड़ा। वी.पी. सिंह ने मंडल कमीशन के रिपोर्ट को लागू किया तो दो समस्यायें साथ–साथ शुरू हो गयी। मंडल कमीशन से जातीय तनाव और ताला खुलने से साम्प्रदायिक सरकार।

सरकार की स्थिरता नरसिंह राव की सरकार से नौवें लोक सभा में शुरू हुआ। देश की आर्थिक स्थिति को डूबने से बचाने के लिए मनमोहन सिंह ने आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत की।

जब उदारवादी राजनीतिक संस्कृति ने याराना पूंजीवाद (Crony Capitalism) को लाया तो लोक सभा का चरित्र ही बदल गया। बाहुबली दागी, व्यापारियों और करोड़पतियों का अड्डा संसद हो गया। सांसद, संसद और अपने क्षेत्र को छोड़कर ऐसे कार्यों में लग गये, जो उनके निजी हितों का पोषण करता हो। 2004 की लोकसभा में करोड़पतियों की संख्या 156 थी 2009 में बढ़कर 316 हो गई।[12] 2009 में लोकसभा में 162 दागी चुनकर आये थे जो 2014 की लोकसभा में बढ़कर 186 हो गए।[13] इसमें अकेले बी.जे.पी. के 98 दागी सांसद थे, जिनमें 66 के विरुद्ध गंभीर कोटि के अपराध दर्ज थे।[14] वर्तमान राज्यसभा के 232 सदस्यों में से 38 के विरुद्ध गंभीर मामले दर्ज हैं।[15] फिर राज्यसभा में सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ ऐसे 12 आदमी मनोनीत किय जाते हैं राष्ट्रपति के द्वारा जिन्होंने भारत का नाम समाज/राष्ट्र के किसी क्षेत्र में रोशन किया हो। राजनीतिक दलों ने राष्ट्रपति के इस अधिकार की आत्मा को पूरी तरह समाप्त कर दिया। अभिनेत्री रेखा या क्रिकेटर सचिन तंदुलकर का मनोनयन यही सिद्ध

करता है। इन दोनों की राज्यसभा में उपस्थिति पूरे सत्र में शायद एक दिन रही है।

इसी प्रकार संसद की कार्यवाही की गंभीरता समाप्त हो गयी है। 2008 में आठ विधेयक मात्र 17 मिनट में पासकर दिए गये और 28 ऐसे सांसद थे 2009 में जो प्रश्नकाल के दौरान कभी उपस्थित रहे ही नहीं।[16] यह सांसदों का विशेषाधिकार है या संसदीय राजनीति का दुर्भाग्य पता नहीं। लेकिन यह तो पक्का है कि हम ज्यों–ज्यों जीवन के कई क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं तो हमारा संसद पतन की ओर जा रहा है। पतन का इससे बढ़िया उदाहरण क्या होगा कि 2011 में दोनों सदनों को मिलाकर 73 दिन ही कार्यवाही चली।[17]

2009 से 2014 नकारात्मक अनूठेपन का गजब उदाहरण पेश किया। न कोई तब किसी ने मनमोहन सिंह को कुछ कहा और न कोई अब मोदी को कुछ कह रहा है। मनमोहन सिंह की ईमानदारी पर कोई शक नहीं है, लेकिन यह दुर्भाग्य ही था कि प्रधानमंत्री मोदी को उन्होंने कटाक्ष का मौका तो दे ही दिया। 2–जी स्पेक्ट्रम, कोल ब्लाक आबंटन और राष्ट्रमण्डल खेल घोटालों, तेलंगाना राज्य के निर्माण और सीमा चौकसी के अभाव के मुद्दों पर विरोधी पक्ष ने सरकार को सामान्य रूप से सदन की कार्यवाही चलने ही नहीं दी। विनोद राय, सी.ए.जी. ने असैनिक एविएशन घोटाले और हाइड्रोकार्बन अन्वेषण घोटाला की प्रतिवेदन की भी सूचनाएँ जोड़ी।[18] सदन आंदोलित रहा और 15वीं लोकसभा में बहस न के बराबर हुई।

इस समय राज्य सभा की स्थिति भयावह रही। कुल मिलाकर लोकसभा ने कुल समय का बयालीस प्रतिशत और राज्य सभा ने बीस प्रतिशत काम रोका प्रस्ताव के कारण खोया।[19] बारह दिनों तक लोकसभा एक घंटे के लिए भी नहीं बैठी[20] निश्चित समय के तेरह प्रतिशत समय में ही लोकसभा में प्रश्नकाल और उन्नीस प्रतिशत में राज्य सभा में प्रश्नकाल का कार्य संपादित हो सका।[21] ''स्पेक्ट्रम घोटाला'', ए.जी. नूरानी के शब्दों में ''सभी घोटालों की जननी थी।''[22] इस कारण पहली बार ऐसा हुआ कि एक पूरा का पूरा सत्र बिना कोई काम किए समाप्त घोषित कर दिया गया।[23] नरेन्द्र मोदी की सरकार बनने के बाद भी राज्यसभा में बी.जे.पी अल्पमत में होने के कारण कम समय तक ही काम हुआ। 2014 में दोनों सदनों को मिलाकर शीत सत्र में मात्र 11 विधेयक ही पारित हुआ। लोक सभा में सत्तारूढ़ पार्टी के सांसदों (साक्षी महाराज और बी.जे.पी. मंत्री स्वामी) के भाषणों में प्रयुक्त शब्दों के विरोध में उठाए गए प्रतिरोध के चलते सदनों की कार्यवाही स्थगित होती रही। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी संसद में न के करावर उपस्थित रहे। अतः 2015 में भी सदन का पतन जारी ही रहा।

संसद के कार्यों की समीक्षा हमें यह भी बताती है कि भारतीय व्यवस्था में राज्य सभा का स्थान लोकसभा की तुलना में कमजोर है। कारण यह है कि लोकसभा सीधे जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि सभा है। इसलिए सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव आने पर या वित्त विधेयक पर राज्य सभा की भूमिका नगण्य है। लेकिन 1989 के बाद एकदलीय प्रभुत्व की जगह बहुदलीय पद्धति आयी। क्षेत्रीय दलों का प्रभाव संसद एवं सरकार दोनों जगहों में बढ़ गया और क्षेत्रीय क्षत्रपों की बढ़ती महत्ता ने राज्य सभा का भी महत्व बढ़ा दिया। क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभाव का ही असर है कि 2014 तक एक भी सरकार ऐसी नहीं थी, जिसको राज्य सभा में विपक्ष के बहुमत का सामना न करना पड़ा हो। अध्यादेश के सहारे सरकार चलाना असंभव है, अन्ततः प्रत्येक अध्यादेश को राज्य सभा की परीक्षा से पास तो होना ही पड़ेगा।

संसद में संसदीय समितियों की भी बड़ी महत्ता है। यह बिना कारण नहीं है कि विपक्ष का कोई नेता ही पब्लिक एकांट कमिटी का अध्यक्ष

होता है। 1993 में भारतीय संसद ने एक महत्वपूर्ण सुधार किया। यह था विभागीय अथवा मंत्रालय की समिति की संरचना। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से कार्यपालिका पर विधायिका का नियंत्रण मजबूत हुआ। इसमें एक खास परम्परा थी कि समिति सर्वसम्मति से निर्णय करती थी किसी भी मुद्दे पर। परन्तु यू.पी.ए. II के समय में जितने घोटाले सामने आए उसमें सर्वसम्मति से निर्णय लेना असंभव हो गया और सरकार ने बहुमत आधारित निर्णय का नियम बना दिया। इससे सदन की मर्यादा एवं कार्यप्रणाली दोनों पर असर पड़ेगा क्योंकि समितियों में बहुमत तो सरकार का ही होता है।

संरचनात्मक चरित्र

चुनाव पद्धति में धीरे–धीरे द्वितीय लोकसभा के समय से ही प्रदूषण की शुरुआत हो गयी थी। बूथ कैप्चरिंग के लिए अपराधी तत्वों का सहारा लेना शुरू कर दिया था। कालान्तर में अपराधियों ने महसूस किया कि जब उनके बल पर ही प्रतिनिधि सभा (लोकसभा और राज्य स्तर पर विधान सभा) के सदस्य चुनाव जीतते हैं तो वही क्यों न चुनाव लड़ें? इस प्रकार राजनीति का अपराधीकरण हो गया और अब अपराधी ही हमारे नेता हो गये। दूसरा एक पहलू सामने आया। नेताओं की आर्थिक बिसात बढ़ गयी और वोट की खरीद–फरोख्त शुरू हो गयी। इसका असर यह भी हुआ कि चुनाव भी काफी महंगा हो गया और पूंजीपतियों का आधिपत्य प्रारम्भ हो गया। पन्द्रहवीं लोकसभा में करोड़पतियों का अनुपात 57.8 प्रतिशत हो गया। दो राष्ट्रीय दलों कांग्रेस और भाजपा में यह प्रतिशत क्रमशः 70.87 प्रतिशत तथा 50.86 था। क्षेत्रीय दलों में भी यह मुख्यधारा हो गया।

2014 के चुनाव में कुल 543 सदस्यों में से 442 सदस्यों की सम्पत्ति 1 करोड़ से ज्यादा है। 2009 में यह संख्या 315 थी और 2004 में करोड़पतियों की संख्या 156 थी।[24] तीन में से एक सांसद 16वीं लोकसभा में अपराधी था। यह कुल सांसदों का लगभग 14 प्रतिशत। 2009 में यह 30 प्रतिशत और 2004 में 24 प्रतिशत था। बी.जे.पी. के कुल 282 सांसदों में 98, कांग्रेस के 44 में 8, ए.आई.ए.डी.एम.के. के 37 में 6, शिवसेना के 18 में से 15, तृणमूल कांग्रेस के 34 में से 7 के खिलाफ अपराध में संलिप्तता का आरोप है।[25]

दो–तीन बातों की चर्चा जरूर होनी चाहिए जिस कारण से संसद की महत्ता और शक्ति क्षीण हुई है –

1. नैतिकता उसी समय समाप्त हो गयी, जब सरकार बचाने के लिए सांसदों को घूस दिया जाता है। (नरसिंह राव की सरकार को बचाने के लिए झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सांसदों को रिश्वत)
2. यद्यपि प्रतिनिधि चरित्र में बदलाव आया है, निम्न वर्ग के लोग संसद आये हैं (सुरक्षित सीटों के कारण) लेकिन उनमें नैतिकता की गिरावट साफ–साफ दिखती।
3. दल–बदल कानून से सांसदों की स्वचेतना एवं स्वतंत्रता दमित हुई। अध्यक्ष और दलों के नेताओं का वर्चस्व बढ़ा है।
4. राजनीति का अपराधीकरण किसी भी दल के लिए शर्म की बात है और अपराधियों की नीयत अपने पद का दुरुपयोग कर अपने लिए रियायत लेना है। संसद, संसदीय कार्यप्रणाली एवं उसकी गरिमा से उनका क्या लेना–देना है।
5. कानूनविद सुभाष कश्यप, जो लोकसभा के महासचिव भी थे और उसकी कार्यप्रणाली को नजदीक से देखा था, कहते हैं कि सांसदों में दृष्टि, प्रतिबद्धता, गुणात्मकता और क्षमता की कमी है

जिससे राष्ट्र की संरचना और मजबूती आती है।[26]

6. सुभाष कश्यप ही कहते हैं कि कांग्रेस लगातार 40 वर्षों की सत्ता और उसका दबदबा भी पार्लियामेण्ट के महत्व को कम कर गया क्योंकि निर्णय पार्टी नेताओं के आदेश से पार्लियामेण्ट में पास कर दिये जाते थे।[27]

प्रो. महेन्द्र प्रसाद सिंह का मत है कि दुनिया के प्रत्येक देश में संसदीय लोकतंत्र का पतन हुआ है। उनकी राय है कि राजनीति के अपराधीकरण के साथ, सांसदों की अनुपस्थिति और राजनीतिज्ञ और उद्योगपतियों का सांठ–गांठ भी कम जिम्मेदार नहीं है।[28]

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचना से लगता है कि आज विधायिका, कार्यपालिका पर नियंत्रण करने के बदले, उससे नियन्त्रित होने लगा है। लगता है कि हम अध्यक्षीय शासन व्यवस्था की ओर जा रहे हैं। बराबर कार्यपालिका और न्यायपालिका में टकराव, प्रत्येक दल में एक व्यक्ति का वर्चस्व एवं नौकरशाही की दिन–प्रतिदिन बढ़ती शक्ति संसदीय लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूपेण हानिकारक है। अगर वर्णित कारणों से जिससे संसद का पतन हुआ है को नहीं रोका गया तो भविष्य अंधकार की ओर बढ़ रहा है।

Copyright © 2015, Dr. Basuki Nath Chaudhry. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

1 एल.एन. शर्मा, द इंडियन प्राईम मिनिस्टर, द मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1976, पृ. 124
2 मौरिस जोन्स, पार्लियामेण्ट इन इंडिया, लॉगमैंस ग्रीन, 1952–1957 में भारतीय कार्यवाही के अध्ययन पर विश्लेषित।
3 वही, पार्लियामेण्ट इन इंडिया, पृ. 220
4 मौरिस जोन्स, पार्लियामेण्ट इन इंडिया, पृ. 220
5 ए.बी. लाल (संपादक), इंडियन पार्लियामेण्ट के परिचय से उद्घाटित पृ. xxi
6 Statistical report of lok sabha election, 1957, Election Commission of India.
7 इंडिया, लोक सभा डिवेट्स, टवस–पग, कॉलम्स 1282–816
8 नेमाइल मैक्सबेल, इंडिया–चाइना वार, पैंथ्यून बुक्स, 1970, पृ. 91
9 हिरेन मुखर्जी, ''दि प्राइम मिनिस्टर एण्ड पार्लियामेण्ट'' पार्लियामेण्टरी स्टडीज़, दिल्ली, 1973, पृ.13
10 विनोद माधवन, ''डेंजरस डिक्लाईन ऑफ पार्लियामेण्ट रोल इन इंडिया'', द न्यू इंडियन एक्सप्रेस, 15.09.2013
11 Election Commission of India
12 नेशनल इलेक्शन वॉच एवं भारत के निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट
13 पुण्य प्रसून वाजपेयी, ''दागियों पर नकेल कसने का फरमान'', प्रभात खबर, पटना, 13.06.2014
14 वही
15 वही
16 सी.वी. मधुकर एण्ड चाकसू रॉय, ''पार्लियामेण्ट नीड्स टू फाईट इट्स वॉयस'', गवर्नेन्स नाउ, 12.03.2010
17 विनोद माधवन ''डेंजरस डिक्लाईन ऑफ पार्लियामेण्ट रोल इन इंडिया'', उपर्युक्त
18 विनोद राय,नॉट जस्ट एन एकाउंटेंट, रूपा पब्लिकेशन्स इंडिय प्रा.लि., नई दिल्ली, 2014, पृ. XI-XVI
19 माधवन, उपर्युक्त
20 वही
21 वही
22 ए.जी. नूरानी, ''विनोद राय लेप्सेजेज : फ्रन्ट लाईन, 17.10.2014
23 माधवन, उपर्युक्त
24 Association of democratic reforms, also business standard 18 May 2014
25 Ibid, 2014
26 Subhash Kashyap, 'Parliament, Reform the self" Shipra Publication, 2000
27 Ibid.
28 एम.पी. सिंह, बी.डी. दुआ और रेखा सक्सेना : दि इंडियन पार्लियामेण्ट : दी चेन्जिंग लेण्डस्कैप : मनोहर पब्लिकेशन, 2014